

जीवन के कारागार में चारु: 'कारागार' उपन्यास में स्त्री-संघर्ष, प्रेम एवं सामाजिक यथार्थ

आकाँक्षा सक्सेना¹ एवं नीलम गर्ग²

¹शोधार्थी, हिन्दी विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद
(उत्तर प्रदेश) E-mail: <aakankshasaxena2210@gmail.com>

²प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद
(उत्तर प्रदेश) E-mail: <drneelamgarg7@gmail.com>

सारांश

डॉ० आरती 'लोकेश' का उपन्यास 'कारागार : एक बंदिनी का अपराध और प्रेम से द्वंद्व' समकालीन हिन्दी उपन्यास परम्परा में स्त्री-अस्तित्व, मानसिक संघर्ष, प्रेम, सामाजिक विसंगतियों एवं मानवीय संवेदना को एक-साथ अभिव्यक्त करने वाली रचना है। उपन्यास की केन्द्रीय पात्र चारु का जीवन केवल व्यक्तिगत त्रासदियों की कथा नहीं है, बल्कि उन सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं का आख्यान है जिनमें स्त्री को उसके अपराध से अधिक उसके स्त्री होने की सजा मिलती है। चारु के जीवन में बचपन की उपेक्षा, लैंगिक हिंसा, प्रेम में छल, आत्मग्लानि, आत्महत्या का प्रयास, कारावास एवं अन्ततः मानव-तस्करी के विरुद्ध संघर्ष—ये सभी घटनाएँ मिलकर 'जीवन' को एक व्यापक 'कारागार' के रूपक में बदल देती हैं। उपन्यास का महत्त्व इस तथ्य में है कि लेखिका चारु को केवल पीड़िता बनाकर नहीं छोड़ती। वह धीरे-धीरे अपने भीतर की शक्ति को पहचानती है तथा अन्ततः व्यक्तिगत पीड़ा को सामाजिक प्रतिरोध में रूपान्तरित करती है। 'मिशन मंजूषा' के माध्यम से उसका संघर्ष निजी मुक्ति से आगे बढ़कर अन्य लड़कियों की मुक्ति का अभियान बन जाता है। इस दृष्टि से उपन्यास स्त्री-चेतना को आत्मदया से आत्मनिर्णय एवं आत्मनिर्णय से सामाजिक उत्तरदायित्व तक ले जाता है। प्रस्तुत शोध-आलेख में चारु के इसी रूपान्तरण का विश्लेषण किया गया है।

प्रमुख शब्द

[चारु, स्त्री-चेतना, स्त्री-संघर्ष, प्रेम, सामाजिक यथार्थ, कारागार, आत्मसम्मान, मानव-तस्करी, स्त्री-अस्मिता।]

Centre For Studies of National Development, Meerut

Editorial Office : D-59, Shastri Nagar, Meerut - 250 004 (INDIA)

Ph. : 0121-2763765, +91-9997771669, +91-9412200765

9

जीवन के कारागार में चारु: 'कारागार' उपन्यास में स्त्री-संघर्ष, प्रेम एवं सामाजिक यथार्थ

1. प्रस्तावना

साहित्य केवल घटनाओं का आख्यान नहीं, बल्कि जीवन एवं समाज के अन्तर्विरोधों को पहचानने का माध्यम भी है। इसी अर्थ में डॉ० आरती 'लोकेश' का 'कारागार': एक बंदिनी का अपराध एवं प्रेम से द्वंद्व समकालीन स्त्री-जीवन की अनेक परतों को उद्घाटित करता है। उपन्यास का केन्द्रीय प्रश्न यह नहीं है कि चारु किस अपराध के कारण बंदिनी बनी, बल्कि यह है कि क्या वास्तव में अपराध उसका था? लेखिका स्वयं चारु को ऐसी स्त्री के रूप में प्रस्तुत करती हैं जिसके जीवन में अपराधी कोई और है, किन्तु दण्ड एवं कलंक उसे भुगतना पड़ता है। उपन्यास की प्रस्तावना में भी उसे 'अपराधी कोई और है परन्तु बंदिनी वह कहलाती है'¹ जैसी स्थिति में देखा गया है। यह कथन उपन्यास की सम्पूर्ण स्त्री-दृष्टि की आधारभूमि निर्मित करता है। इस प्रकार, चारु की व्यक्तिगत त्रासदी के माध्यम से उपन्यास उन सामाजिक संरचनाओं एवं लैंगिक पूर्वाग्रहों को प्रश्नांकित करता है, जो स्त्री के जीवन, निर्णय एवं अस्मिता को नियन्त्रित करते हैं। चारु का संघर्ष केवल अपने अस्तित्व और सम्मान की पुनर्प्राप्ति का संघर्ष नहीं, बल्कि अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध और आत्मनिर्णय की चेतना के विकास की प्रक्रिया भी है।

कथा की संरचना भी उल्लेखनीय है। उपन्यास को नौ खण्डों—'कही अनकही', 'महकती पंखुड़ियाँ', 'मुरझाए लम्हे', 'उधार का प्यार', 'गुनगुनाते कंटक', 'बुनते-उधड़ते नाते', 'कारागार', 'मिशन मंजूषा' एवं 'प्रदीप्त उषा'—में विभाजित किया गया है।² ये शीर्षक चारु के जीवन की क्रमिक मनोवैज्ञानिक यात्रा के भी संकेतक हैं।

2. अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य डॉ. आरती 'लोकेश' के उपन्यास 'कारागार : एक बंदिनी का अपराध और प्रेम से द्वंद्व' की केन्द्रीय पात्र चारु के जीवन-संघर्ष और उसके स्त्री-अस्तित्व के विभिन्न आयामों का विश्लेषण करना है। अध्ययन में बचपन की उपेक्षा, लैंगिक हिंसा, प्रेम में छल, आत्मग्लानि, कारावास तथा मानव-तस्करी के विरुद्ध संघर्ष जैसी परिस्थितियों के सन्दर्भ में चारु के मानसिक एवं सामाजिक संघर्ष को समझने का प्रयास किया गया है। साथ ही, यह अध्ययन चारु के पीड़िता से संघर्षशील और आत्मनिर्णयक्षम स्त्री के रूप में होने वाले रूपान्तरण तथा उसके व्यक्तिगत संघर्ष के सामाजिक प्रतिरोध में परिवर्तित होने की प्रक्रिया को रेखांकित करता है।

3. शोध-पद्धति

प्रस्तुत शोध-आलेख में विषय की प्रकृति के अनुरूप पाठ-विश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक एवं व्याख्यात्मक शोध-पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का प्रमुख आधार डॉ. आरती 'लोकेश' का उपन्यास 'कारागार : एक बंदिनी का अपराध और प्रेम से द्वंद्व' है, जिसके कथानक, पात्रों, घटनाओं, संवादों और स्त्री-अनुभवों का निकट पाठ के माध्यम से विश्लेषण किया गया है। चारु के जीवन-संघर्ष को स्त्री-अस्तित्व, लैंगिक हिंसा, प्रेम, सामाजिक विसंगतियों, कारावास, आत्मनिर्णय और मानवीय संवेदना के सन्दर्भ में व्याख्यायित किया गया है। विशेष रूप से 'जीवन के कारागार' के रूपक तथा 'मिशन मंजूषा' के

माध्यम से व्यक्तिगत पीड़ा से सामाजिक प्रतिरोध की ओर चारु के रूपान्तरण को अध्ययन का प्रमुख विश्लेषणात्मक आधार बनाया गया है।

4. जीवन के कारागार में चारु

4.1 चारु : बचपन से ही सामाजिक कारागार की बंदिनी

चारु का संघर्ष कारागार की चारदीवारी से आरम्भ नहीं होता। उसका वास्तविक कारागार बचपन से निर्मित होता है। माता-पिता के स्नेह से वंचित चारु को संरक्षण तो मिलता है, किन्तु आत्मीयता नहीं। उसे भोजन, विद्यालय एवं सुविधाएँ मिलती हैं, परन्तु भावनात्मक सुरक्षा नहीं मिलती। लेखिका इस विडम्बना को अत्यन्त मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती हैं—चारु को ‘माँ की ममता’ के स्थान पर वस्तुगत सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। परिणामतः वह समय से पहले मानसिक रूप से वयस्क होने लगती है।³

यहाँ स्त्री-संघर्ष का एक महत्वपूर्ण आयाम सामने आता है—परिवार स्वयं स्त्री के लिए सुरक्षा का स्थान न रहकर नियन्त्रण का स्थान बन सकता है। चारु के जीवन में उपेक्षा उसे भीतर से संकुचित करती है। लेखिका बताती हैं कि आवश्यकता एवं परिस्थितियों ने उसे समय से पहले बड़ा बना दिया।⁴

चारु के बचपन पर परिवार की विखण्डित संरचना का प्रभाव उसके व्यक्तित्व में स्पष्ट दिखाई देता है। इसलिए ‘कारागार’ को केवल जेल-कथा मानना उसकी व्यापकता को सीमित करना होगा। चारु का वास्तविक कारागार सामाजिक अपेक्षाओं, पारिवारिक उपेक्षा, लैंगिक असमानता एवं अपराध-बोध से निर्मित मानसिक संरचना है।

4.2 स्त्री-देह एवं पुरुषवादी दृष्टि: चारु के संघर्ष का निर्णायक चरण

उपन्यास का सबसे गम्भीर स्त्री-विमर्शात्मक पक्ष चारु के साथ घटित देहगत हिंसा है। किशोरावस्था में ही वह पुरुष दृष्टि के उस रूप से परिचित होती है जो स्त्री को व्यक्ति न मानकर उपभोग की वस्तु समझता है। चारु अनुभव करती है कि कुछ युवक उसे मित्रता के योग्य नहीं, बल्कि उपयोग के योग्य समझते हैं।⁵

यह अनुभव उसके भीतर स्त्री होने के प्रति एक गहरे भय को जन्म देता है। आगे चलकर वन अनुसन्धान संस्थान में मिश्रा जी द्वारा किया गया शोषण इस भय को वास्तविक त्रासदी में बदल देता है। समारोह के दौरान चारु को जिस प्रकार अकेला करके उसके साथ जबरदस्ती करने का प्रयास किया जाता है, वह केवल व्यक्तिगत अपराध नहीं बल्कि सत्ता, पद एवं पितृसत्तात्मक मानसिकता के गठजोड़ को सामने लाता है।⁶

इस प्रसंग में चारु का प्रतिरोध प्रत्यक्ष रूप से हिंसक नहीं है; वह अपने को बाथरूम में बन्द कर स्वयं को बचाती है। वह परिस्थितियों से पूरी तरह पराजित नहीं होती, बल्कि उपलब्ध सीमित साधनों में अपने शरीर एवं अस्तित्व की रक्षा करती है।⁷

स्त्री-अस्मिता के सन्दर्भ में उपन्यास की एक महत्वपूर्ण पंक्ति इस प्रकार है—

“स्त्री योनि में जन्म लेने का प्रायश्चित्त तो करना ही पड़ता है।”⁸

यह कथन चारु की निजी अनुभूति होते हुए भी व्यापक सामाजिक मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है। स्त्री के साथ अपराध पुरुष करता है, लेकिन सामाजिक कलंक स्त्री के हिस्से आता है। यही वह बिन्दु है जहाँ ‘कारागार: एक बंदिनी का अपराध और प्रेम से द्वंद्व’ का शीर्षक अधिक अर्थवान हो जाता है।

4.3 स्त्री-संघर्ष से आत्मनिर्णय की ओर

चारु का संघर्ष केवल सहने का संघर्ष नहीं है। वह धीरे-धीरे आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ती है। आर्थिक रूप से किसी पर बोझ न बनने की उसकी इच्छा उसे अपने श्रम के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने की दिशा में ले जाती है। वह पंडित शास्त्री के बच्चों को पढ़ाने के बदले संगीत सीखने का निर्णय करती है। उपन्यास में उसे स्पष्टतः ‘स्वावलम्बन की आकांक्षा रखने वाली’ स्त्री के रूप में देखा गया है।⁹

यहीं से चारु के व्यक्तित्व में स्त्री-चेतना का दूसरा चरण विकसित होता है। वह दया की पात्र बनने के बजाय अपने श्रम, प्रतिभा एवं शिक्षा के माध्यम से अपना भविष्य निर्मित करना चाहती है। इसीलिए उसके लिए शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्ति नहीं, बल्कि आत्मसम्मान का साधन है।

कारागार में भी यह चेतना समाप्त नहीं होती। वहाँ अन्य महिला कैदियों के साथ रहते हुए चारु बागवानी करती है, पढ़ती है तथा अपनी सृजनात्मक क्षमता का उपयोग करती है। कारागार (जेल) उसके लिए दण्डस्थल होने के साथ-साथ आत्ममन्थन का स्थान भी बन जाता है। वह अपनी सजा को स्वीकार करती है, परन्तु निष्क्रिय नहीं होती।¹⁰

कारागार के भीतर उसका बागवानी से जुड़ना विशेष रूप से अर्थवान है। जिस स्त्री का जीवन भीतर से सूख चुका था, वही पौधों में जीवन का संचार करती है। वह सब्जियों की क्यारी तैयार करती है तथा अन्य स्त्रियों को भी उससे जोड़ती है।¹¹

अतः प्रकृति यहाँ केवल सौन्दर्य का प्रतीक नहीं है; वह पुनर्जन्म, उपचार एवं प्रतिरोध का प्रतीक बन जाती है।

4.4 प्रेम: मुक्ति या नया कारागार?

विपुल का प्रेम उपन्यास के स्त्री-विमर्श को और जटिल बनाता है। चारु प्रेम को अस्वीकार इसलिए नहीं करती कि वह प्रेम-विरोधी है, बल्कि इसलिए कि वह अपने अतीत को लेकर स्वयं को विपुल के योग्य नहीं मानती। उसका भय है कि उसका अतीत विपुल के भविष्य को नष्ट कर देगा।

वह कहती है—

“मैं तुम्हारे योग्य कदापि नहीं हूँ, इसलिए तुम्हारे प्रणय-निवेदन को स्वीकार नहीं कर सकती हूँ।”¹²

यहाँ स्त्री की आत्मछवि पर सामाजिक नैतिकता का प्रभाव दिखाई देता है। चारु अपने ऊपर हुए अपराध की जिम्मेदारी स्वयं लेने लगती है। यही पितृसत्तात्मक व्यवस्था की सबसे सूक्ष्म सफलता है—पीड़िता स्वयं को दोषी मानने लगे।

विपुल के प्रति उसका प्रेम इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वह पहली बार चारु को उसके अतीत से अलग एक स्वतन्त्र मनुष्य की तरह देखने वाला पुरुष है। चारु के मन में विवाह का प्रश्न भी इसी कारण नया अर्थ ग्रहण करता है। वह विवाह को केवल सामाजिक संस्था के रूप में नहीं देखती, बल्कि इस बात पर विचार करती है कि कहीं वह विपुल को अपनी परिस्थितियों के कारण ‘बन्धनों में’ तो नहीं बाँध देगी।¹³

यहाँ प्रेम की अवधारणा स्वामित्व से हटकर सह-अस्तित्व की ओर जाती है। विपुल का प्रेम चारु पर अधिकार नहीं चाहता; वह उसकी स्वेच्छा का सम्मान करता है। जब चारु उससे बात करने का निर्णय करती है, तब भी विपुल उसके निर्णय और स्वतन्त्रता को प्राथमिकता देता है।¹⁴

इस प्रकार, उपन्यास में प्रेम स्त्री को बचाने वाला ‘पुरुष-नायक’ मॉडल नहीं बनता, बल्कि उसके आत्मनिर्णय को स्वीकार करने वाली संवेदना बनता है।

4.5 आत्महत्या से आत्मबोध तक

चारु के जीवन का सबसे तीखा मनोवैज्ञानिक संकट उसका आत्महत्या का प्रयास है। प्रेम में उपेक्षा एवं अतीत की पीड़ा उसे जीवन निरर्थक लगने तक पहुँचा देती है। किन्तु रावी में छलाँग लगाने के बाद दूसरे बच्चों को जीवन के लिए संघर्ष करते देखकर उसके भीतर आत्मबोध जागता है। वह समझती है कि जीवन केवल व्यक्तिगत सुख-दुःख का नाम नहीं है।¹⁵

अस्पताल में वह अपने जीवन का पुनर्मूल्यांकन करती है और यह अनुभव करती है कि वह ‘पीड़ित’ है, किन्तु ‘अपाहिज’ नहीं; दुर्बल है, किन्तु ‘निस्सहाय’ नहीं।¹⁶

यही क्षण चारु के व्यक्तित्व का निर्णायक मोड़ है। आत्मघाती चारु धीरे-धीरे संघर्षशील चारु में बदल जाती है। वह अपनी सजा को स्वीकार करती है तथा उसे आत्ममन्थन का अवसर बनाती है।¹⁷

इसलिए 'कारागार' में जेल केवल दण्ड का प्रतीक नहीं है; वह चारु के लिए आत्मपरिचय की प्रयोगशाला भी बन जाता है।

4.6 व्यक्तिगत पीड़ा से सामाजिक प्रतिरोध: मिशन 'मंजूषा'

उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि चारु अपने निजी दुःख में स्थिर नहीं रह जाती। वह अपनी पीड़ा को सामाजिक प्रतिरोध में बदल देती है। 'मिशन मंजूषा' के माध्यम से मानव-तत्करी के विरुद्ध उसका संघर्ष स्त्री-चेतना को व्यक्तिगत स्तर से सामाजिक स्तर तक विस्तृत करता है।

मानव-तत्करी के प्रसंग में लेखिका स्त्रियों एवं बालिकाओं को खरीदने-बेचने वाली सामाजिक संरचना का भयावह चित्र प्रस्तुत करती हैं। लड़कियों को विवाह, प्रेम अथवा बेहतर जीवन के झूठे स्वप्न दिखाकर जाल में फँसाया जाता है और बाद में उनका शोषण किया जाता है।¹⁸

मौली का प्रसंग इस सामाजिक यथार्थ को और मार्मिक बनाता है। चारु स्वयं को इसलिए अपराधी मानती है कि वह मौली की रक्षा नहीं कर पाई। किन्तु यही अपराध-बोध आगे चलकर उसके सामाजिक संकल्प की ऊर्जा बनता है।¹⁹

इस प्रकार, चारु का संघर्ष निजी मुक्ति से आगे बढ़कर सामूहिक मुक्ति का संघर्ष बन जाता है। यही स्त्री-चेतना का उच्चतर रूप है—अपने घाव को दूसरों के लिए ढाल में बदल देना।

4.7 'कारागार' का व्यापक अर्थ

उपन्यास के शीर्षक को यदि प्रतीकात्मक दृष्टि से देखें तो कारागार की कई परतें दिखाई देती हैं—परिवार, समाज, देह, स्मृति, अपराध-बोध, प्रेम, विवाह, जेल एवं अन्ततः स्वयं का भय। चारु भौतिक कारागार से बाहर आ सकती है, परन्तु मानसिक कारागार से मुक्त होना अधिक कठिन है।

इसीलिए उपन्यास के भीतर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आत्मबोध उभरता है—

“जीवन के कारागार के भीतर डोलते सायों को अपना कवच बनाकर हिम्मत के हथियार से अँधेरों को काटना होगा।”²⁰

यह पंक्ति चारु की सम्पूर्ण जीवन-दृष्टि का सार है। अब वह परिस्थितियों से भागना नहीं चाहती; उनका सामना करना चाहती है। यही परिवर्तन उसे साधारण पीड़ित स्त्री से संघर्षशील स्त्री में रूपान्तरित करता है।

4.8 'प्रदीप्त उषा': स्त्री-संघर्ष का सकारात्मक परिणाम

उपन्यास का अन्तिम खण्ड 'प्रदीप्त उषा' अपने शीर्षक के अनुरूप अन्धकार के बाद प्रकाश का संकेत देता है। चारु को 'वीरांगना पुरस्कार' से सम्मानित किया जाता है तथा 'मिशन मंजूषा' द्वारा बचाई गई बालिकाओं के भविष्य के लिए शिक्षा तथा चिकित्सा की व्यवस्था की जाती है।²¹

लेकिन लेखिका की दृष्टि केवल पुरस्कार प्राप्ति पर नहीं रुकती। चारु अपनी सजा पूरी करना चाहती है क्योंकि वह विशेष कृपा लेकर कारागार से बाहर निकलना उचित नहीं समझती। उसके लिए संविधान, न्याय एवं अन्य कैदियों के प्रति उत्तरदायित्व महत्वपूर्ण हैं।²²

यहाँ चारु का व्यक्तित्व पूर्णता प्राप्त करता है। वह अब केवल अपने लिए निर्णय लेने वाली स्त्री नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय के प्रति उत्तरदायी नागरिक है।

उपन्यास के अन्तिम हिस्से में विपुल एवं चारु का मिलन भी केवल प्रेम-कथा का सुखांत नहीं है। शम्भुदा का जीवन, मंजु की वापसी तथा चारु-विपुल के सम्बन्ध का पुनर्संयोजन यह संकेत देता है कि टूटे हुए सम्बन्ध पुनः निर्मित हो सकते हैं।²³

5. निष्कर्ष

‘कारागार’ : एक बंदिनी का अपराध और प्रेम से द्वंद्व’ को केवल प्रेम, अपराध अथवा जेल की कथा के रूप में पढ़ना उसके व्यापक सामाजिक आशय को सीमित करना होगा। यह मूलतः स्त्री-अस्तित्व की यात्रा है—उपेक्षा से आत्मबोध तक, हिंसा से प्रतिरोध तक, अपराध-बोध से आत्मस्वीकृति तक तथा निजी पीड़ा से सामाजिक उत्तरदायित्व तक।

चारु के जीवन में पुरुषवादी व्यवस्था की अनेक परतें दिखाई देती हैं—परिवार में भावनात्मक उपेक्षा, स्त्री-देह को उपभोग की वस्तु मानने वाली दृष्टि, यौन शोषण, प्रेम में असुरक्षा, सामाजिक कलंक एवं स्त्री को उसके अतीत के आधार पर मूल्यांकित करने की प्रवृत्ति। किन्तु लेखिका इन परिस्थितियों के सामने चारु को अन्ततः निष्क्रिय नहीं रहने देती।

उसकी सबसे बड़ी विजय यह है कि वह अपने अतीत को मिटाती नहीं, बल्कि उसके अर्थ को बदल देती है। कारावास उसके जीवन का अन्त नहीं, एक नई शुरुआत बनता है। कारावास की क्यारी में पौधे उगाने वाली चारु अन्ततः सामाजिक जीवन में आशा के पौधे रोपती है। उसकी निजी पीड़ा ‘मिशन मंजूषा’ के माध्यम से अनेक बालिकाओं की सुरक्षा का कारण बनती है।

इस दृष्टि से चारु आधुनिक हिन्दी उपन्यास की उस स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है जो केवल ‘मुक्ति’ नहीं चाहती, बल्कि अपनी मुक्ति को सामाजिक मुक्ति से जोड़ती है। यही ‘कारागार’ की स्त्री-चेतना की सबसे बड़ी शक्ति है।

अतः यह कहना समीचीन होगा कि ‘कारागार’ में चारु की यात्रा ‘बंदिनी से वीरांगना’ एवं ‘पीड़िता से प्रतिरोधकर्ता’ बनने की यात्रा है। जीवन रूपी कारागार की सलाखें अन्ततः बाहर से नहीं, भीतर से टूटती हैं। चारु का चरित्र इसी आन्तरिक मुक्ति का सशक्त रूपक है। उसके जीवन में ‘प्रदीप्त उषा’ केवल सुखांत नहीं, बल्कि उस चेतना का प्रतीक है जो अन्धकार को पहचानकर भी प्रकाश की ओर बढ़ने का साहस रखती है।

सन्दर्भ-सूची

1. आरती ‘लोकेश’, **कारागार : एक बंदिनी का अपराध एवं प्रेम से द्वंद्व**, चेन्नई, तमिलनाडु: नोशन प्रेस पब्लिशिंग, द्वितीय संस्करण, 2022, पृ0सं0 75-76.
2. वही, पृ0सं0 ix-xvi
3. वही, पृ0सं0 54-55.
4. वही, पृ0सं0 55.
5. वही, पृ0सं0 90.
6. वही, पृ0सं0 91-92.
7. वही, पृ0सं0 92.
8. वही, पृ0सं0 76.
9. वही, उपन्यास के पूर्ववर्ती प्रसंग में चारु की स्वावलंबन-चेतना।
10. वही, पृ0सं0 145-146.
11. वही, पृ0सं0 146-147.
12. वही, पृ0सं0 123.
13. वही, पृ0सं0 109-110.
14. वही, पृ0सं0 110-111.
15. वही, पृ0सं0 141-143.
16. वही, पृ0सं0 144.

17. वही, पृ०सं० 145.
18. वही, पृ०सं० 171-172.
19. वही, पृ०सं० 173.
20. वही, पृ०सं० 108-109.
21. वही, पृ०सं० 175.
22. वही, पृ०सं० 175-176.
23. वही, पृ०सं० 197.

